इकाई 2 सामाजिक स्तरीकरण के प्रति नज़रिया

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप :

- प्रकार्यवादी नजरिए के बारे में बता सकेंगे;
- वेबर के स्तरीकरण सिद्धांत पर रोशनी डाल सकेंगे;
- द्वंद्वात्मक सिद्धांत की रूपरेखा बता सकेंगे; और
- नृविज्ञानी नजरिए का सार समझा सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ व्यक्तियों में श्रेष्ठता और हीनता के संबंधों का होना है। इस प्रकार के सिद्धांत राज्य और समाज द्वारा माने और लागू किए जाने वाले नियमों और मूल्यों के समुन्वय से संचालित होते हैं। टैलकॉट पारसंस सामाजिक संबंधों के 'पैटर्नीकरण' या 'क्रमस्थापन' को समाज की स्तरीकरण पद्धति का नाम देते हैं। सामाजिक संबंधों के क्रम-स्थापन में मूल्य-व्यवस्था, सत्ताधिकार का ढांचा, प्रदत्त, उपलब्धि, नियमों का अनुपालन या उनसे विचलन इत्यादि समेत अनेक परिवर्ती शामिल होते हैं। सामाजिक स्तरीकरण को पारसंस सर्वव्यापी और अपरिहार्य मानते हैं क्योंकि यह प्रवेश और पुरस्कार के कुछ निश्चित सिद्धांतों के आधार पर समाज के सदस्यों की अलग-अलग स्थितियों को परिभाषित करता है और उन्हें सदस्यों को सौंप कर समाज के सुचारु रूप से संचालन को सुनिश्चित करता है। वह कहते हैं: "सामाजिक स्तरीकरण को यहां व्यक्तियों का प्रभेदी श्रेणीकरण माना जाता है जो एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था की रचना करते हैं और जो सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण संदर्भों में एक दूसरे को श्रेष्ठ और हीन का दर्जा देते हैं।"

स्पष्टतया पारसंस का नजरिया सर्वांगी या व्यवस्था से जुड़ा है क्योंकि इसमें मुख्यत: समाज के विभिन्न पहलुओं के क्रमस्थापन या एकीकरण को महत्व दिया गया है। कोई भी समाज हमेशा द्वंद्व की स्थिति में नहीं रह सकता और कोई भी समाज पूर्णत: एकीकृत भी नहीं रह सकता। सभी मानव समाजों का सार "गतिशील संतुलन" है। इस प्रकार के दृष्टिकोण को समाज के अध्ययन का कार्यपरक या प्रकार्यवादी सिद्धांत कहते हैं। इस नजरिए के एकदम उलट 'द्वंद्वात्मक' सिद्धांत है। इसमें 'उच्च' और 'निम्न' लोगों के हितों में मौजूद अंतर्विरोधों पर जोर दिया गया है, जिन्हें कार्ल मार्क्स ने 'बुर्जुआ' और 'सर्वहारा' नाम दिया है। द्वंद्वात्मक सिद्धांत अपने-आपको ऐतिहासिक रूप से मान्य और सार्वभौमिक रूप से प्रासंगिक मानता है। कार्यपरक सिद्धांत की मीमांसा हमें नृविज्ञानी नजरिए में भी देखने को मिलती है। इस सिद्धांत में 'पूर्व-औद्योगिक' समाजों के परिप्रेक्ष्य में भी सामाजिक कारकों के बजाए आयु, लिंग और नातेदारी जैसे जैविक कारकों को महत्व दिया गया है। इस इकाई में हम सामाजिक स्तरीकरण को समझने की दिशा में इन नजरियों की भिन्नताओं और उनके फलितार्थों के साथ चर्चा करेंगे। इसका एक कारण यह भी है कि भारतीय समाज में जाति, वर्ग और जनजातियों को समझने के लिए इन नजरियों या सिद्धांतों को बड़े अलग-अलग ढंग से प्रयोग किया गया है।

2.2 प्रकार्यवादी नज़रिया

'प्रकार्य' शब्द सामाजिक पद्धति के रख-रखाव के लिए अर्थव्यवस्था, नीति, धर्म इत्यादि पहलुओं के सकारात्मक परिणामों को दर्शाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसीलिए प्रकार्यवादी या कार्यपरक सिद्धांत सामाजिक स्तरीकरण को अपरिहार्य घटना मानता है। प्रकार्यवादी या कार्यकरक विभेदन भी अपरिहार्य है क्योंकि एक व्यक्ति अपनी सभी जरूरतों की पूर्ति खुद नहीं कर सकता। एक व्यक्ति सभी आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम नहीं होता, इनकी पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न रुचि और योग्यता वाले व्यक्तियों की जरूरत पड़ती है। सो, विभिन्न व्यक्ति जो कार्य करते हैं उसके महत्व के अनुसार ही सामाजिक स्तरीकरण और क्रम-परंपरा बनती है।

2.2.1 डेविस और मूर

किंगसले डेविस और विल्बर्ट ई. मूर ने सामाजिक स्तरीकरण के जिस कार्यपरक सिद्धांत का प्रतिपादन किया वह उपरोक्त चरित्र-चित्रण के अनुरूप है। इस सिद्धांत की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:

i) सामाजिक स्तरीकरण अपरिहार्य है;

वैमक्तिक स्तर और शक्ति में बिभिन्नताएँ
साभर : बी. किरणमई

ii) विभिन्न कार्यों के लिए विभेदी रुचि और योग्यता की आवश्यकता पड़ती है;

iii) सामाजिक स्थानों और दायित्वों का विभेदी मूल्यांकन;

iv) विभिन्न प्रकार्यों से जुड़े विभेदी महत्व के आधार पर परितोषिक या पुरस्कार;

v) मूल्य और पुरस्कार ही सामाजिक अंतर और स्तरीकरण को जन्म देते हैं।

इस प्रकार सामाजिक स्तरीकरण भूमिकाओं और कर्त्तव्यों की भिन्नता का परिणाम है। भिन्न दायित्व और भूमिकाएं विभेदी सत्ताधिकार और प्रतिष्ठा लिए रहती हैं और मानव समाज के अस्तित्व के लिए भूमिकाओं और दायित्वों का विभेदन या उनका अलग-अलग होना अपरिहार्य है। इसलिए स्तरीकरण सामाजिक जीवन में अपरिहार्य बन जाता है।

बॉक्स 2.01

तर्क की दृष्टि से कार्यपरक सिद्धांत हालांकि एक ठोस प्रथापना लगता है, लेकिन इसकी व्यापक आलोचना हुई। जोसेफ शुमपीटर वर्गों की रचना, प्रकृति और मूलभूत नियमों को महत्व देते हैं जो एक वर्ग द्वारा किए जाने वाले कार्य के महत्व और वह उस कार्य को जिस हद तक अंजाम देता है इस पर निर्भर है। मूल्यांकन सापेक्षिक होता है। वर्ग के एक सदस्य के रूप में व्यक्ति का कार्य एक निर्णायक कारक है। इसलिए शुमपीटर वर्गों के उदय में ऐतिहासिक स्थितियों को महत्व देते हैं।

2.2.2 ट्यूमिन की मीमांसा

मगर डेविस-मूर के सिद्धांत की मेल्विन एम. ट्यूमिन ने कड़ी आलोचना की है, जिन्होंने एक नैसर्गिक लक्षण के रूप में सामाजिक स्तरीकरण को चुनौती दी। उन्हें सामाजिक स्तरीकरण की आवश्यकता के प्रकार्यात्मक महत्व की ऐतिहासिक मान्यता पर संदेह है। ट्यूमिन के अनुसार डेविस-मूर ने अधिक या कम सत्ताधिकार और प्रतिष्ठा की स्थितियों की जो धारणा पेश की वह 'पुनरुक्ति और दोषपूर्ण क्रिया-विधि' है। कार्य का आबंटन और उसका निष्पादन स्थितियों के बजाए पुरस्कारों का आधार हैं। डेविस मूर ने 'कम कार्यपरक' और 'अधिक कार्यपरक' के बीच जो भेद किया है ट्यूमिन के अनुसार वह भी भ्रामक है क्योंकि एक इंजीनियर किसी भी कार्य को श्रमिकों और अन्य कर्मियों के समान रूप से महत्वपूर्ण योगदान के बिना पूरा नहीं कर सकता है।

अभ्यास 1

अपने अध्ययन केन्द्र के सहपाठियों के साथ कार्यपरक सिद्धांत के बारे में चर्चा करें जिससे इसकी कमजोरियां और शक्ति पता चले। इस बहस से आपको जो भी जानने को मिलता है उसे अपनी नोटबुक में लिख लीजिए।

श्रम का विभाजन एक आवश्यकता है। मगर जैसा डेविस-मूर का विचार था, सामाजिक विभेदन आवश्यकता नहीं है। कार्यपरक सिद्धांत को सामान्य और अनिश्चित माना जाता है क्योंकि यह समाजों में व्याप्त असमानताओं और श्रेणियों का निर्धारण करने वाले कारकों के बारे में कुछ नहीं बताता है। राल्फ डाहरेंडॉर्फ के अनुसार स्तरीकरण न तो मानव स्वभाव में निहित होता है और न ही यह निजी संपत्ति की ऐतिहासिक रूप से संदेहास्पद अवधारणा में है। बल्कि यह समाज के 'सत्ताधारी ढांचे' में निहित होता है, जो नियमों और आदेशों को बनाए रखने के लिए जरूरी है।

2.3 सामाजिक स्तरीकरण का मैक्स वेबर सिद्धांत

सामाजिक स्तरीकरण का अधिक ठोस सिद्धांत मैक्स वेबर ने 'वर्ग, स्थिति और दल' के अपने विश्लेषण में प्रस्तुत किया है। वेबर ने आर्थिक ढांचे, स्थिति पद्धति और राजनीतिक सत्ताधिकार में सिर्फ भेद ही स्पष्ट नहीं किया। बल्कि उन्होंने इन तीनों के बीच सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था के रूप में विद्यमान

अंतरसंबंधों को भी जाना है। 'वर्ग' एक आर्थिक तथ्य है, 'बाजार स्थिति' की उपज है जिसका सीधा सा अर्थ विभिन्न वर्गों जैसे खरीदारों और विक्रेताओं में स्पर्धा है। 'स्थिति' या दर्जा 'प्रतिष्ठा' का स्वीकारिता है। जिस प्रकार लोग विभिन्न वर्गों में बंटे होते हैं उसी प्रकार स्थिति समूह भी 'प्रतिष्ठा' के वितरण के आधार पर बंटे रहते हैं जिसका निर्धारण एक समाज में प्रचलित नाना प्रकार के प्रतीकों के रूप में होता है। विश्लेषण की दृष्टि से वर्ग और स्थिति समूह हालांकि एक दूसरे से स्वतंत्र हैं, लेकिन वे एक दूसरे से काफी जुड़ी हैं। यह एक निश्चित काल में समाज की प्रकृति और उसकी रचना पर निर्भर करता है। 'दल' शब्द का अर्थ यहां सत्ताधिकार सदन से है। वेबर के स्तरीकरण के सिद्धांत का मुख्य बिंदु यही सत्ताधिकार है। सत्ताधिकार सिर्फ सत्ताधिकार के लिए हो सकता है। या फिर यह अर्थ-निर्धारित सत्ताधिकार हो सकता है। अर्थ-निर्धारित सत्ताधिकार सामाजिक या कानूनी सत्ताधिकार के समरूप नहीं होता। आर्थिक शक्ति या सत्ताधिकार अन्य समूहों में मौजूद सत्ताधिकार का परिणाम हो सकता है। सत्ताधिकार के लिए प्रयास हमेशा आर्थिक लाभ के लिए ही नहीं किया जाता है। जैसा हमने उल्लेख किया है, यह सत्ताधिकार या सामाजिक प्रतिष्ठा पाने के लिए किया जा सकता है। हर प्रकार के सत्ताधिकार से सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिलती और सामाजिक प्रतिष्ठा का सत्ताधिकार ही एकमात्र स्रोत नहीं है। कभी-कभी संपत्तिधारी ओर संपत्तिहीन दोनों का संबंध एक ही स्थिति समूह से हो सकता है। इस प्रकार स्थिति या हैसियत सामाजिक प्रतिष्ठा से निर्धारित होती है। यह सामाजिक प्रतिष्ठा विभिन्न 'जीवन शैलियों' के माध्यम से व्यक्त की जाती है जो समाज में व्यक्ति की आर्थिक या राजनीतिक स्थिति से अनिवार्य रूप से प्रभावित नहीं होतीं।

2.3.1 वेबर के सिद्धांत की समीक्षा

'वर्ग, स्थिति और दल' का वेबर सिद्धांत इस प्रकार समाज में विद्यमान तीन 'व्यवस्थाओं' यानी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं की उनकी धारणा के अनुरूप है। इसका यह निहित अर्थ भी है कि सामाजिक स्तरीकरण मूलभूतरूप से वर्ग आधारित या अर्थ-निर्धारित नहीं होता है। असल में सामाजिक स्तरीकरण का विश्लेषण आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कोणों से करके वेबर ने कार्ल मार्क्स के आर्थिक निर्धारणवाद से अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है। इसकी चर्चा हम यहां करेंगे।

वेबर का सामाजिक स्तरीकरण सिद्धांत काफी हद तक वर्ग, स्थिति और सत्ताधिकार के निर्धारण में व्यक्ति और उसकी मनोवृत्तियों और प्रेरणाओं को पर्याप्त महत्व देता है। स्थिति-निर्धारण में 'व्यक्तिनिष्ठ घटक' मनोवैज्ञानिक समूह (जिसमें व्यक्ति में समूह का सदस्य बनने की भावना आ जाती है) पर आधारित है। यह अगर स्पर्धा के जरिए हो रहा हो तो यह बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस प्रकार के वर्गों को व्यक्तिनिष्ठ और सामाजिक स्तर को वस्तुनिष्ठ श्रेणी माना जाता है। सामाजिक वर्ग आर्थिक संयोजन की एक विशेष प्रणाली की सोच रखने के कारण एक समूह होता है। जो व्यक्ति अपनी स्थिति प्रतिष्ठा और हितों के प्रति इसी प्रकार चिंतित रहते हैं और जो सामूहिक दृष्टिकोण मगर भिन्न मनोवृत्ति रखते हों, वे एक ही स्थिति समूह या वर्ग से संबंध रखते हैं। इस प्रकार सामाजिक स्तरीकरण के 'व्यक्तिनिष्ठ' या 'मनोवैज्ञानिक' आयाम को मानने पर, वर्ग लोगों का एक मनोवैज्ञानिक समूह है जो वर्ग चेतना (समूह सदस्यता की भावना) पर निर्भर होता है, व्यवसाय, आमदनी, जीवन-स्तर, सत्ताधिकार, शिक्षा, बुद्धिमता इत्यादि ढांचागत मानदंड कुछ भी हों। ढांचागत मानदंड प्रकृति से 'वस्तुनिष्ठ' होते हैं, इसलिए वे स्तरों (लोगों के सामाजिक और आर्थिक समूहों और श्रेणियों) की रचना करते हैं। वर्ग का व्यक्तिनिष्ठ निर्धारण एक समाज के उन्नत आर्थिक और सामाजिक विकास का द्योतक है। सिर्फ एक उन्नत समाज में ही एक व्यक्ति का वर्ग उसके अहम् का हिस्सा होता है। वर्गीय चेतना की समानता साधारणतया एक अत्यधिक विभेदित और आर्थिक व सामाजिक रूप से क्रम-परंपरा में बंधे समाज से उत्पन्न नहीं होती। फिर 'स्तर' और 'वर्ग' के बीच अंतर विश्वसनीय नहीं लगता क्योंकि स्तर की वस्तुनिष्ठ कसौटी वर्ग को मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति देती है।

बोध प्रश्न 1

1) ट्यूमिन के प्रकार्यवादी सिद्धांत की मीमांसा के बारे में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

2) सामाजिक स्तरीकरण पर वेबर के नजरिए का सार पांच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

2.4 द्वंद्वात्मक नज़रिया

समाज और इतिहास के अध्ययन में द्वंद्वात्मक सिद्धांत के सबसे बड़े प्रवर्तक कार्ल मार्क्स थे। उनका सिद्धांत सिर्फ आर्थिक समझ और विश्लेषण तक ही सीमित नहीं था। बल्कि वह समाज का एक व्यापक संरचनात्मक सिद्धांत है। मार्क्स की यह सिद्धांत श्रेष्ठ तो है, मगर वह वर्ग को स्थिति और सत्ताधिकार दोनों से ऊपर रखते हैं, जिसे वेबर पूरी तरह से स्वीकार नहीं करते। मार्क्स के अनुसार आर्थिक ढांचा समाज का "आधार" या नींव है और उसकी "अधिरचना" या बाहरी ढांचा राज्य व्यवस्था, धर्म, संस्कृति इत्यादि से बनता है। मार्क्स कहते हैं कि सामाजिक स्तरीकरण का निर्धारण उत्पादन संबंधों की व्यवस्था और "स्थिति" का निधीरण इसी व्यवस्था में उत्पादन के साधनों के स्वामित्व और स्वामित्वहीनता की कसौटी पर व्यक्ति की स्थिति से होता है। उत्पादन साधनों के स्वामियों को मार्क्स ने "बुर्जुवा" और उत्पादन साधनहीन लोगों को सर्वहारा नाम दिया। मात्र आर्थिक समूह होने के बजाए ये असल में सामाजिक श्रेणियां हैं। उत्पादन 'सामाजिक प्राणियों, द्वारा होता है इसलिए उत्पादन संबंधों का अभिप्राय मात्र आर्थिक स्थिति न होकर एक 'सामाजिक संदर्भ' है। बुर्जुवा और सर्वहारा के बीच के संबंध 'सामाजिक' होते हैं और दोनों को 'प्रभुत्व' और 'अधीनता' या प्रभावी उच्च और हीन संबंधों के रूप में देखा जा सकता है। अब हम द्वंद्वात्मक सिद्धांत की बुनियादी विशेषताओं पर चर्चा करेंगे।

2.4.1 बुनियादी विशेषताएं

1) सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक इत्यादि अन्य सभी प्रकार के संबंधों का आधार अर्थिक हित हैं।

2) समाज में दो मुख्य वर्ग होतें हैं: (i) उत्पादन के साधनों के स्वामी (बुर्जुवा) और (ii) मजदूरी कमाने वाले (सर्वहारा)। इन वर्गों को मार्क्स धनवान और निर्धन भी कहते हैं।

3) इन दोनों वर्गों के हित एक दूसरे से टकराते है क्योंकि बुर्जुवा सर्वहारा का शोषण करता है। इसलिए दोनों में वर्ग संघर्ष होता है।

4) बुर्जुवा अपने वाजिब हिस्से से अधिक प्राप्त कर लेते हैं इसलिए वे अधिशेष (अतिरिक्त लाभ) हथिया लेते हैं। यह वर्ग संघर्ष को तेज करता है जो समाज को क्रांति और उसमें प्रचलित स्तरीकरण के आमूल परिवर्तन की ओर ले जाता है। मार्क्स के अनुसार वर्ग समाज की बुनियादी विशेषता है। ये वर्ग उत्पादन प्रणाली की उपज हैं, जो असल में सत्ताधिकार या शक्ति संबंधों की ही एक व्यवस्था है। उत्पादन के साधनों का स्वामित्व रखने का मतलब है प्रभुत्व और सत्ताधिकार पाना। तो सेवा-चाकरी करना और मानव श्रम की आपूर्ति का मतलब है अधीनता और परनिर्भरता। इस अर्थ में वर्ग एक सामाजिक वास्तविकता है, एक वास्तविक जन समूह है, जिसमें अपने अस्तित्व अपने

स्थान, लक्ष्यों और क्षमताओं के प्रति चेतना होती है। वर्ग समाज का दर्पण, उसका आईना है, जिसमें हम सामाजिक ताने-बाने और आंतरिक गति को देख सकते हैं, उन्हें जानने समझने की कोशिश कर सकते हैं।

2.4.2 बुर्जुआ और सर्वहारा

कार्ल मार्क्स और उनके मित्र फ्रेडरिक एंजेल्स के विचार में बुर्जुआ और सर्वहारा दो विपरीत ध्रुव हैं जिनमें हमेशा हितों को लेकर टकराव होता है। ये दोनों विरोधी खेमे एक दूसरे के विरुद्ध संगठित भी रहते हैं। मार्क्स बुर्जुआ के विरुद्ध सर्वहारा एकता के प्रबल समर्थक थे ताकि वह एक राजनीतिक शक्ति के रूप में अपने हितों की रक्षा कर सके। यह एकता इसलिए भी जरूरी थी क्योंकि शासक वर्ग (बुर्जुआ) ने विचारों की स्वतंत्रता, संस्कृति, धर्म और राज्य व्यवस्था को दबाता था। राज्य या राजसत्ता भी उत्पादन के साधनों के स्वामियों के वर्चस्व का दास बन गया था। इसलिए मार्क्स के लिए वर्ग समाज और संस्कृति के ढांचे ओर उनके फलितार्थों को समझने के लिए एक परिप्रेक्ष्य, एक विधि और ठोस वास्तविकता है।

बॉक्स 2.02

मार्क्सवादी द्वंद्वात्मक धारणा दो दर्शनों को लेकर चलती हैं ये हैं: भौतिकतावाद और आदर्शवाद दोनों दर्शन एक दूसरे के उलट लगते हैं। मगर मार्क्स ने इतिहास और समाज के बारे में जो समझ बनाई उसमें उन्होंने इन दोनों विरोधी दर्शनों को एक साथ रखा। मार्क्स और एंजेल्स के सिद्धांत में ये दोनों दर्शन मिल जाते हैं क्योंकि वे 'भौतिक' को 'आदर्श' (या मानसिक) के ऊपर रखते हैं। इन दोनों के बीच संघर्ष एक वास्तविकता है जो उत्तरोत्तर परिवर्तन की ऐतिहासिक प्रक्रिया में बदल जाता हैं। इसलिए मार्क्सवादी सिद्धांत विकासक्रमिक भौतिकवादी भी है।

मार्क्स और एंजेल्स के अनुसार द्वंद्वात्मक भौतिकतवाद के मूल नियम इस प्रकार हैं: (i) मात्रा का गुणवत्ता में परिवर्तन का नियम, (ii) विलोम एकता का नियम जिसके अनुसार ठोस वास्तविकता की एकता विलोमों या अंतर्विरोधों की एकता है, और (iii) निषेध का नियम (वाद, प्रतिवाद और संवाद यानी थिसिस, 'एण्टीथिसिस' और सिंथेसिस की रूपरेखा), जिसका यह मतलब है कि विलोमों या विरोधियों के टकराव में एक विलोम दूसरे का निषेध करता है और इस प्रक्रिया में उसका निषेध एक उच्चस्तर के ऐतिहासिक विकास द्वारा होता है जो दोनों निषेधित विलोमों का कुछ अंश बचाए रखता है।

2.4.3 द्वंद्वात्मक नजरिए की समीक्षा

समाज के बारे में मार्क्स का सिद्धांत भौतिकतावादी और द्वंद्वात्मक दोनों ही हैं इसलिए यह विज्ञान सम्मत भी है। मगर हम इस बात को नकार भी नहीं सकते कि मानव जीवन में साझी वास्तविकता भी विद्यमान है। अकेले विछिन्नताएं ही इतिहास और मानव समाज की विशेषता नहीं कही जा सकती हैं। इसलिए मार्क्स का यह कालजयी कथन हमारे लिए प्रांसगिक हो जाता है: "अभी तक विद्यमान रहने वाले समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।" लेकिन मार्क्स और एंजेल्स जानते थे कि वर्ग पूंजीवादी समाज की सबसे बड़ी विशेषता है इसीलिए बुर्जुआ और सर्वहारा ही आधुनिक पूंजीवादी युग का संपूर्ण सामाजिक स्तंभ बने। मगर मुख्य प्रश्न इन मूल वर्गों के सामाजिक श्रेणीकरण या स्तरीकरण से जुड़ा है। एंजेल्स और कुछ हद तक मार्क्स भी समझते थे कि इन मूल वर्गों के अलावा समाज में मध्यवर्ती और संक्रामक स्तर भी होते हैं। इसका अर्थ यही है कि ये द्विवर्ग सिद्धांत को गलत सिद्ध करते हैं। एक तरह से यह पूंजीवाद और आधुनिक राज्य प्रणाली के विकास के अनुरूप ही है।

अभ्यास 2

अपने अध्ययन केन्द्र के सहपाठियों के साथ स्तरीकरण के द्वंद्वात्मक सिद्धांत पर चर्चा कीजिए। आज के विश्व में क्या यह सिद्धांत मान्य होगा? अपनी नोटबुक में इस पर टिप्पणी लिखिए।

आज के नव-स्वतंत्र विकासशील देशों में मध्यम वर्गों का एक जीवंत ढांचा बन गया है जो बुर्जुआ और सर्वहारा दोनों पर एक तरह का नियंत्रण बनाए हुए है। इनमें एक सामाजिक वास्तविकता के रूप में गैर-पूंजीवादी संरचना, पूंजीवाद जिसके हाशिए में हो, उस का उदय अभी होना बाकी है जो बुर्जुआ और सर्वहारा के रूप में सामाजिक ढांचे का निश्चित स्वरूप पा लेने का द्योतक हो। भारत जैसे देश में स्थिति तंत्र ('स्टैटस एपरेटस') के नियंत्रक पूंजीवादी नहीं बल्कि राजनीतिक दलों के नेता और बुद्धिजीवी हैं। समाज के इन वर्गों से एक नया प्रभावी वर्ग/अभिजात वर्ग उभरा है जो सत्ता में काबिज हो गया है। उधर राज्य को नियंत्रित करने, उसे संचालित करने में नौकरशाही अपनी अलग से महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। कुछ समाजों में आमदनी, शिक्षा और सांस्कृतिक उत्पादों तक पहुंच, हैसियत और सत्ताधिकार का मुख्य आधार बन गया है। बुर्जुआ और सर्वहारा के द्विभाजन के रूप में अकेले आर्थिक स्थिति एक सामाजिक वास्तविकता अभी नहीं बन पाई है।

2.4.4 डाहरेंडॉर्फ की मीमांसा

समाज के बारे में मार्क्सवादी सिद्धांत से यूं तो राल्फ डाहरेंडॉर्फ सामान्यतया सहमत हैं, मगर वह वर्ग-द्वंद्व के सर्वव्यापी चरित्र पर सवाल उठाते हैं। उनके अनुसार द्वंद्व संदर्भ-विशेष होता है और सत्ता या प्रभुत्व की निश्चित संस्थाओं के संदर्भ में बल प्रयोग सामाजिक श्रेणीकरण की कुंजी है। इस प्रकार लोगों के दो प्रकार के समूह होते हैं: (1) जो बलप्रयोगकर्ता है और (2) जिन्हें बाध्य किया जाता है। इस तरह का प्रभुत्व और दासता सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों जैसे, आर्थिक, राजनीतिक, औद्योगिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इत्यादि में पाया जाता है। एक प्रकार का द्वंद्व अब दूसरे द्वंद्व के साथ नहीं पाया जाता। सामाजिक ढांचे की स्थितियों को 'वर्ग' के बजाए 'द्वंद्व समूह' चित्रित करते हैं। 'सत्ता' प्रभुत्व और अधीनता का एक वैध संबंध है। सत्ता संबंध हमेशा आधिपत्य और पराधीनीकरण का संबंध होता है इस प्रकार स्तरीकरण हो जाता है।

2.4.5 भारतीय परिदृश्य

इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्ग और वर्ग-संघर्ष की मार्क्सवादी धारणाओं की छाप भारत में कृषि और शहरी औद्योगिक ढांचे के अध्ययनों में दिखाई देती है। लेकिन खुद मार्क्स ने भी भारत के आर्थिक और सामाजिक ढांचे के विशिष्ट चरित्र पर चिंतन किया था। पूर्व-पूंजीवाद कालीन भारत में जाति और वर्ग साथ-साथ विद्यमान थे। सामंतवाद, जाति, संयुक्त परिवार, निर्वाह प्रधान अर्थव्यवस्था इत्यादि विशेषताएं औपनिवेशकालीन भारत में मौजूद थीं। आज भी भारत में ठेठ बुर्जुआ और सर्वहारा जैसे वर्ग नहीं दिखाई देते। बल्कि जनता में पूर्व-पूंजीवाद युग के जैसे स्वतंत्र कामगारों, नियोक्ताओं, सफेद-पोश (व्हाइट-कॉलर) कर्मचारियों और नीलपोश (ब्लू-कॉलर) कर्मचारियों के स्पष्ट पहचान वाले समूह हैं जिनमें से 15 प्रतिशत संगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं। व्यापक औद्योगीकरण और एकाधिकारवादी पूंजीवाद के ढांचे में ये विविधरूप वर्ग नहीं आते। मजदूर संघों और कामगारों की सौदेबाजी सौदाकारी ने नियोक्ताओं की जकड़ को ढीला कर दिया है। एक सीमा तक वर्ग समरसता भी वास्तविकता बन गई है। वेतन-भोगी लोगों की श्रेणी बड़ी धुंधली सी है जिसमें नाना प्रकार के कामगार शामिल हैं जो हर महीने 1,000 रुपये से लेकर 15,000 रुपये तक कमाते हैं। अंततः जाति अब आनुष्ठानिक संबंधों की महज एक व्यवस्था भर नहीं रह गई है उसे वर्ग और सत्ताधिकार के तत्व भी साथ में मिलते हैं। ये सभी कारक भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण के अध्ययन में मार्क्सवादी नजरिए के इस्तेमाल को सीमित कर देते हैं।

2.5 नृविज्ञानी नज़रिया

सदस्यता इकाइयों की ठोस और विश्लेषिक संरचनाओं और सामाजिक प्रक्रिया के सामान्यीकृत पहलुओं की तरह स्तरीकरण की 'विश्लेषिक' और 'ठोस' अवधारणाएं भी हैं। विश्लेषणात्मक दृष्टि से स्तरीकरण सभी समाजों की अमूर्त आवश्यकता है। मूर्त रूप से यह समाज विशेष में सत्ताधिकार या शक्ति और विशेषाधिकार, लाभों और उपकारों का अनुभवजन्य वितरण है। इस तरह स्तरीकरण एक प्रक्रिया होने के

साथ-साथ एक परिस्थिति (यानी स्थिति समूहों का क्रम-विन्यास और भूमिकाओं का आबंटन) भी है यानी स्थिति समूहों की संरचना यह परिस्थिति सामाजिक प्रक्रिया की उपज और शर्त दोनों है।

इस प्रकार नृविज्ञानी नजरिया पूर्व-औद्योगिक समाजों में स्थिति-प्रतिष्ठा की प्रक्रिया से जुड़े पहलुओं को प्रकाश में लाता है। प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य मुख्यतः स्थिति-प्रतिष्ठा निर्धारण के सामाजिक प्रतिमानों जैसे आमदनी, पेशा, शिक्षा, सत्ता और सत्ताधिकार पर ही जोर देता है और तथाकथित गैर-सामाजिक प्रतिमानों जैसे आयु, लिंग और नातेदारी को छोड़ देता है। बहरहाल, पूर्व औद्योगिक समाजों में तथाकथित 'सामाजिक' प्रतिमान अस्तित्व में नहीं थे क्योंकि ये प्रतिमान आधुनिक समाजों पर लागू नहीं होते। बल्कि इनके बजाए तथा-कथित 'गैर-सामाजिक' प्रतिमान पूर्वऔद्योगिक समाजों में सामाजिक विभेदन की प्रक्रिया को समझने के लिए सामाजिक दृष्टि से अधिक प्रासंगिक हैं। इस नजरिए के मुख्य प्रवर्तक एम.जी. स्मिथ ने पूर्वऔद्योगिक सामाजिक संरचनाओं में व्यक्ति की हैसियत और दर्जे के निर्धारकों के रूप में लिंग-भूमिकाओं और आयु समुच्चयों का विश्लेषण किया। लिंग-भूमिकाओं और आयु-समुच्चय परिस्थिति नहीं हैं। ये दोनों कारक व्यक्ति के जीवन काल में निरंतर बदलते रहते हैं और इसी के अनुसार व्यक्ति की स्थिति या हैसियत और भूमिका भी बदल जाती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक लिंग-भूमिकाएं और आयु समुच्चय बदलते रहते हैं। इसलिए परिस्थितियां और प्रक्रिया सबसे कम उन्नत समाजों समेत सभी समाजों में बुनियादी रूप से पाई जाती हैं। आयु, लिंग और नातेदारी हमेशा से सामाजिक स्थिति का बोध और वास्तविकता के अति महत्वपूर्ण प्रतिमान रहे हैं। सभी परिवारों और समुदायों में सामाजिक स्थिति के फलितार्थों को प्रतिबिंबित करने वाले आयु-आधारित विभेद, सामाजिक-लिंग (जेंडर) अन्य सामाजिक और क्रम-परंपरागत संबंध और नातेदारी पर आधारित संबंधों पर आधारित स्थिति-प्रतिष्ठा विभेद सभी जगह विद्यमान रहते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) द्वंद्वात्मक सिद्धांत की मूलभूत विशेषताओं के बारे में पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

2) सामाजिक स्तरीकरण के नृविज्ञानी सिद्धांत की रूपरेखा पांच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

2.6 सारांश

प्रकार्यवादी और द्वंद्वात्मक सिद्धांतों ने सामाजिक स्तरीकरण विशेषकर जाति और वर्ग के अध्ययन को काफी हद तक प्रभावित किया है। इन दोनों सिद्धांतों के अनुप्रयोग के चलते भारत में 'फील्ड-वर्क' की कुछ निश्चित परंपराएं स्थापित हुई हैं। उदाहरण के लिए, एककालिक विश्लेषणों का आधार कार्यपरक परिप्रेक्ष्य रहा है, जिनमें स्तरीकरण के विभिन्न स्तरों पर सामाजिक ढांचों के साम्य या समरसता को प्रमुखता मिली है। दूसरी ओर सामाजिक बदलाव, सामाजिक ढांचे का प्रतिस्थापन/परिवर्तन द्वंद्वात्मक सिद्धांत का प्रमुख विषय है। 'एकीकरण' में अनिवार्यतः 'द्वंद्व' और द्वंद्व में 'एकीकरण' मौजूद होता है।

'समरसता' या 'एकता' व्यवस्था को जीवित रखती है और प्रक्रिया/परिवर्तन सामाजिक संबंधों के गतिहीन प्रबंधों को पुनर्जीवित करता है। सामाजिक स्तरीकरण एक बहुआयामी और 'संयुक्त' परिघटना है। ढांचागत बदलाव स्थापित क्रम परंपराओं पर आक्रमण करते हैं और अधोगामी और ऊर्ध्वगामी दोनों प्रकार की गतिशीलता लाते हैं। समूह, परिवार और व्यक्तिगत स्तर पर विभेदित मूल्यांकन समाज के बुनियादी ढांचागत परिवर्तन के कारण संगामी होता है। लेकिन किसी भी समय व्यवस्था का समूल पलट नहीं हो पाता है। यही कारण है कि जाति एक अनुकूलनकारी और लचीली व्यवस्था है। तीन या अधिक पीढ़ियों के सदस्यों के बीच में परिवार-केन्द्रित सहयोग भी परिवर्तन की बाहरी शक्तियों के हमले को रोकने के लिए बना रहता है। प्राथमिक या प्रमुख संबंधों की धुरी के रूप में समुदाय को समरस जीवन के लिए एक वांछनीय युक्ति माना जाता है। इसलिए प्रकार्यवादी या कार्यपरक, द्वंद्वात्मक और नृविज्ञानी दृष्टिकोणों को सूझ-बूझ के साथ प्रयोग करने की जरूरत है, न कि इनमें से किसी एक को दूसरे का विकल्प मानकर। इनका संदर्भ-विशेष अनुप्रयोग किसी समाज को बेहतर ढंग से समझने और उसका विश्लेषण करने के लिए बड़ा ही उपयोगी और समृद्धकारी होगा।

2.7 शब्दावली

नृविज्ञानी : यह ऐसा सिद्धांत है जो पूर्व औद्योगिक समाजों में स्थिति या दर्जे की प्रक्रिया से जुड़े पहलुओं को लेकर चलता है।

द्वंद्वात्मक : यह सिद्धांत संपन्न और निर्धन वर्गों के बीच वैमनष्यपूर्ण संबंधों को लेकर चलता है।

कार्यपरक या : यह सिद्धांत अर्थ-व्यवस्था, राज्य-व्यवस्था, धर्म, इत्यादि पहलुओं के प्रकार्यवादी साकारात्मक परिणामों को लेकर चलता है।

सर्वहारा : यह समाज का वह तबका है जिसके पास उत्पादन के साधन नहीं होते और दिहाड़ी मजदूरों के रूप में काम करता है।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

स्मिथ, एम.जी. 1964; "प्री-इंडस्ट्रियल स्ट्रैटीफिकेशन सिस्टम्स" एस.एम. लिपसेट और एन.जे. स्मेल्सर (संपादित) *सोशल स्ट्रक्चर ऐंड मोबिलिटी इन इकोनॉमिक डेवेलपमेंट*, लंदन रुटलेज एंड केगन पॉल पृ. 141-76

ट्यूमिन, मेल्विन एम.; 'सम प्रिंसिपल्स ऑव स्ट्रैटीफिकेशन' *अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू* अंक 18, पृ. 387-97

वेबर, मैक्स 1947; "क्लास, स्टैटस, पार्टी" एच.एच. गर्थ और सी.डब्लू० मिल्स (संपादित) *फ्राम मैक्स वेबर: ऐसेज इन सोशियॉलाजी*, लंदन, रूटलेज ऐंड केगन पॉल, पृ. 180-94

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ट्यूमिन इस धारणा को चुनौती देते हैं कि सामाजिक स्तरीकरण सामाजिक संगठन की एक नैसर्गिक विशेषता है। उनके अनुसार कार्यपरक सिद्धांत घुमावदार तर्क (या पुनरुक्ति) का सहारा लेता है। उनके अनुसार किसी कार्य का सौंपा जाना और उसके निष्पादन का संबंध स्थिति के बजाए पुरस्कारों से है। वह श्रम के विभाजन को तो अनिवार्य मानते हैं लेकिन डेविस-मूर के इस कथन को नहीं मानते कि सामाजिक विभेदन अनिवार्य है।

2) मैक्स वेबर के अनुसार स्तरीकरण में आर्थिक ढांचे, स्थिति व्यवस्था और राजनीतिक सत्ताधिकार के बीच अंतर्संबंध होता है। वेबर के सिद्धांत में वर्ग एक आर्थिक परिघटना, स्थिति या हैसियत प्रतिष्ठा की मान्यता और सत्ताधिकार भी अर्थनिर्धारित होता है। अर्थनिर्धारित सत्ताधिकार हमेशा सामाजिक या कानूनी सत्ताधिकार के समरूप नहीं होता। इन कारकों के अंतर्संबंध से अलग-अलग जीवन-शैलियां विकसित होती हैं। यह समाज में आर्थिक और राजनीतिक स्थिति से अनिवार्यत: प्रभावित नहीं होता।

बोध प्रश्न 2

1) द्वंद्वात्मक सिद्धांत की निम्न विशेषताएं हैं:

   i) इसमें आर्थिक हितों को अन्य सभी प्रकार के संबंधों का आधार माना जाता है।

   ii) समाज में मुख्य दो वर्ग होते हैं। (क) उत्पादन के साधनों के स्वामी और (ख) श्रमिक

   iii) इसके अनुसार स्वामियों और श्रमिकों के हितों में टकराव होता है।

   iv) बुर्जुआ वर्ग अधिक उत्पादन करता है और हमेशा जायज से अधिक हिस्से पर अधिकार कर लेता है।

2) नृविज्ञानी सिद्धांत पूर्व-औद्योगिक समाज में प्रक्रियासंबंधी पहलुओं पर जोर देता है। एम.जी. स्मिथ स्थिति और हैसियत के निर्धारकों के रूप में लिंग-भूमिकाओं और आयु-समुच्चयों का विश्लेषण किया। लिंग-भूमिकाएं और आयु-समुच्चय गतिशील होते हैं और व्यक्ति के जीवनकाल में बदलते रहते हैं। इस प्रकार परिस्थितियां और प्रक्रिया समाज का आधार बनती हैं।